International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-5 Sep - Oct – 2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

यज्ञों का वैज्ञानिक आधार

पूजा शर्मा
शोधार्थी
संस्कृत विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म०प्र०

डा० ऋतु भारद्वाज
शोध निर्देशिका
संस्कृत विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म०प्र०

सारांश

बात यह है कि देवताओं को हमें उनका हव्य देना है। हम हैं स्थूल, पर देवता हैं सूक्ष्म। हम उन्हें हव्य देंगे, तो उन्हें कैसे प्राप्त होगा? उन्हें तो सूक्ष्म हव्य चाहिए, तभी वे प्रसन्न होंगे। इसका उपाय सोचा गया था 'यज्ञ'। इसका दृष्टांत भी समझ लेना चाहिए। हमें अपने आत्मा को भोजन भी स्थूल है, पर आत्मा हमारी सूक्ष्म है। उसे यह स्थूल भोजन कैसे मिल सकता है? उसे चाहिए सूक्ष्म भोजन। उसका उपाय यह सोचा गया था कि हम उस स्थूल भोजन को मुख में द्वारा अपनी जठराग्नि में होम करें । ऐसा करने से वह जठराग्नि उस स्थूल भोजन को सूक्ष्म कर देती है।

कुंजी शब्द— यज्ञ, वैज्ञानिक आधार

प्रस्तावना

वहीं सूक्ष्म अन्न हमारे आत्मा को प्राप्त हो जाने से वह हमारे शरीर को स्वस्थ रखता है। यदि आत्मा को वह स्थूल अन्न न पहुँचाया जायेगा, तो हमारा शरीर, मन, इन्द्रियां आदि सभी अस्वस्थ हो जायेंगे। फिर हम न अपना कोई लाभ कर सकेंगे, न दूसरों को उपकार। न कुछ बुद्धि द्वारा दूसरों का, न अपना कुछ हित सोच सकेंगे। जब हम अग्नि में हव्य डालते हैं, तब स्थूल अग्नि उस हवि को सूक्ष्म कर देती है और शान्त होकर स्वयं भी सूक्ष्म हो जाती है। तब वह सूक्ष्म अग्नि सूक्ष्म महाग्नि के साथ मिलकर उसे सूक्ष्म वायु की सहायता से आकाशभिमुख आती हुई द्युलोक में पहुँचकर देवों को सपर्पण करती है। वे देवता उस सूक्ष्म हवि से तृप्त होकर प्रजा के हित के लिये धान्य आदि की उत्पति के लिये यथोचित वृष्टि कर देते हैं। जैसे कि मनुस्मृति में कहा गया है और उसी का बीज वेद में मिलता है—

'हविष्यान्तमजरं स्वविदि दिविस्पृशि आहुतं जुष्टमग्नौ'— ऋ.सं. 10/8/88

श्री दुर्गाचार्य ने लिखा है—

'हवि पानतंदेवाना च पुरेाडाशादि निर्दग्धस्थील भावमग्निता क्रियते।

स्वः—आदित्यः, यं वेत्ति, यश्चाऽसौ वेदितव्यः—इति स्वविंद् अग्निः।

दिविस्पर्शः— द्यामसौ स्पृशति हविरुपनयन् आदित्यम्।' (निरुक्त 7/25/1)

इससे स्पष्ट हुआ कि जब हम देवताओं को प्रसन्न कर लेंगे, तो वह सम्पूर्ण चराचर स्थावर जङ्गम पालित रहेगा, क्योंकि सभी का निर्वाह वृष्टि एवं अन्न पर है। उन देवताओं को प्रसन्न करने का उपाय है— यज्ञ तो यज्ञ से देवपूजा सिद्ध हुई, अतः यज्ञ का महत्व सिद्ध हुआ।

शास्त्रों की यह घोषणा है कि यज्ञ देवों को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है, विचारियें ये देव कौन हैं? इनका हमसे क्या सम्बन्ध है? हम यज्ञ में इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते और हमारे प्रति उनका भी कुछ कर्तव्य है। श्रीमद्भागवद्गीता में लिखा है—

देवान् भावयताऽनेन ते देवाः भावयन्तुवः।
परस्परं भावयन्तः श्रेय परमवाप्स्यथ।।

प्रजापति ने कहा— इस यज्ञ के द्वारा देवों को प्रभावित करो— तृप्त करो, तृप्त हुए देव तुमको तृप्त करें। परस्पर तृप्त करते हुए आप सब परम कल्याण को प्राप्त करेंगे। विचारना चाहिए कि वे कौन से देव हैं, जिनको प्रजा यज्ञ के द्वारा तृप्त करती है और उसके बदले में सुख की अथवा अनुकूल स्थितियों की वर्षा से प्रजा की तृप्त कर देते हैं। इसकी खोज में जब हम निकलते हैं, हमें अग्नि, चन्द्र, पृथ्वी, सूर्य, औषधि, वनस्पति आदि नामों में व्यवहृत देवों का पता लगता है। यज्ञ से इनकी तृप्ति कैसे होती है, यह भी विचार करना आवश्यक है। इसका एक स्थूल रूप मनु के श्लोक द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्ज्यते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य की किरणों में उपस्थित होती है। उसके संसर्ग में अन्तरिक्ष में इस प्रकार का वातावरण निर्मित हो जाता है, जिससे मेघों का संग्रह होने लगता है, वे समय पाकर पृथ्वी पर बरसते हैं, उस पर वृष्टि से यहाँ औषधि, वनस्पति, लता, फल, फूल आदि विविध खाद्य पदार्थ न केवल मानव के, अपितु प्राणिमात्र के लिए उत्पन्न हो जाते हैं। औषधि, वनस्पति, लता, फूल, फल, आदि खाद्यों में विविध प्रकार की जीवन शक्तियाँ (खाद्योज) रहती हैं, जो फलादि का उपभोग करने से प्राणियों को जीवन प्रदान करती हैं। वे जीवन शक्तियाँ इनमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल आदि के प्रभाव से ही उत्पन्न हो पाती हैं।

यदि हम यज्ञादि अनुष्ठान करके आज्य एवं अन्य विविध सामग्री को अग्नि के द्वारा उन देवों कर पहुँचाते रहते हैं, तो वे उन जीवन शक्तियों को अधिक और उत्तम रूप से उत्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। यही यज्ञ के द्वारा देवों की तृप्ति का स्वरूप है। यदि हम यज्ञ नहीं करते तो यह विराट् रूप से प्रजापति के जो यज्ञ हो रहा है— सूर्य, चन्द्र किरणों द्वारा रस वर्षा करते हैं, ताप पहुँचाते हैं, वायु प्राण संचार करता है, जल अनुकूल रसों को प्रदान करता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओं के रूप में अनन्त राक्षस या असुर हमारे जीवन को चाट जाने के लिये हमारे चारों ओर मँडराते हैं, ये सबदेव मिलकर उन असुरों का ध्वंस करने के लिए बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। पर हमारे द्वारा मलीनता आदि का प्रसार करने वाले कार्यों से असुरों की संख्या में कल्पनातीत वृद्धि हो जाती है जिससे प्रजा में रोग आदि महामारी के रूप में फैल जाते हैं। प्रजा नष्ट होने लगती है। पर वह इसके आधार—भूत कारणों को नहीं समझ पाती और कष्ट उठाती है।

यदि हम यज्ञ का बराबर अनुष्ठान करते हैं तो देवों को उससे पुष्ट बनने में पूरा सहयोग प्राप्त होता है। यज्ञ से वायुकी शुद्धि का यही अभिप्राय है, केवल वायु पद तो उपलक्षण मात्र है उसका तात्पर्य सभी देवों की शुद्धि अर्थात् पुष्टि होने से है। समस्त वातावरण की शुद्धि ही यहाँ अपेक्षित है। इस प्रकार पुष्ट व तृप्त होकर समस्त देव उन असुरो का विनाश करने में पूर्ण समर्थ होते हैं, जिससे हमको दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। यह शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि यज्ञ देवों की खुराक है।

शतपथ ब्राह्मण के वाक्य हैं—

प्रजापतिदेवानब्रवीतत् यज्ञो वोऽन्नम्।
यज्ञ उ देवानामन्नम।।

प्रजापति ने देवों को बताया—यज्ञ आपका अन्न है खाद्य है, यज्ञ ही देवों का अन्न है। अब यदि हम यज्ञ न करके देवों को भूखा मरने देंगे तो निश्चित ही असुर बढ़ जायेंगे। मानव रोगी और क्षीण आयु होगा, जो आज सम्मुख स्पष्ट दीख रहा है—

यदु ह किंच देवाः कुर्वते स्तामेनैव त कुर्वत।
यज्ञा वै स्तोमो यज्ञेनैव तत्कुर्वते।।

देव अपना जो कुछ कार्य करते हैं वे स्तोम रूप साधन के द्वारा ही करते हैं। स्तोम यज्ञ का नाम है, इसलिए यज्ञ के द्वारा ही वे अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है कि यज्ञ के द्वारा चारों ओर के वातावरण में कुछ अनुकूल प्रभाव पड़ता है या नहीं। जब अग्नि में आज्य अथवा अन्य उपयोगी शाकल्य द्रव्य आहुत किये जाते हैं, उनके दग्ध होने पर दूर अवस्थित व्यक्ति को विशेष प्रकार की सुगन्ध का स्पष्ट अनुभव होता है। आहुत द्रव्यों की जीवनपयोगी शक्तियाँ अग्नि के द्वारा अति सूक्ष्म अवस्था में परिवर्तित होकर वायु आपस, पृथ्वी, सूर्य—रश्मि आदि देवों में निहित उन जीवनी शक्तियों में अनुपम स्फूर्ति प्रदान करती हैं, जो खाद्य के रूप में आकर प्राणिमात्र को जीवन प्रदान करने वाली हैं।

बहुत लोग डरते हैं कि यज्ञ में जो घृत आदि दग्ध कर दिया जाता है, यदि उसे किसी व्यक्ति को दे दिया जाय ओर वह उनका उपयोग करले, तो उसका भला हो जाय, उसे व्यर्थ जला देने से क्या लाभ? वस्तुतः ऐसा विचार रखने वाले लोग जान— बूझकर अज्ञानी बनते हैं। एक व्यक्ति के द्वारा प्रयुक्त किया हुआ घृत आदि केवल उसी व्यक्ति को थोड़ा—बहुत लाभ पहुँचायेगा, पर उतने ही घृत का यज्ञाग्नि द्वारा यदि प्रयोग किया जाय, तो वह सहस्त्रों व्यक्तियों के लिए लाभप्रद होगा। इसीलिये तो यज्ञ त्यागमय व परोपकारमय है इसमें प्रत्येक व्यक्ति की सेवा की भावना निहित रहती है। यज्ञाग्नि में पद्रत्त एक आहुति सूक्ष्म होकर देवों में अनन्त जीवन शक्तियों को स्फूर्ति प्रदान करती है, जिनका लाभ सहस्राधिक व्यक्तियों को पहुँचने वाला होता है। यज्ञ सम्बन्धी इन भावनओं को लेकर शतपथ ब्राह्मण में कुछ सन्दर्भ लिखे गये हैं, जो इन अर्थों पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं—

ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या
उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्ययेव
त्वन् विषेणेवं त्वत् प्रतिलिलिपुः
उतैव चिद्देवानभि—= भवेमेति
ततो न मनुष्या आशशुर्न पशव
आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा अनाश्केन नातपरावभूवुः।
ते देवा होचुर्पन्तद मासामपि
जषाँसामेति, केनेति? तज्ञेनैवेति। (2/2, 3/22)

असुरों ने उन समस्त औषधियों को मारक तत्व अथवा विष से मानो लिप्त कर दिया, उसका उपयोग कर समस्त मानव व पशु अपना जीवन निर्वाह करते हैं, ऐसा करके उन्होंने यह सोचा, कि इस प्रकार हम देवों को परास्त कर लेंगे। पर उन औषधियों को उस अवस्था में पशुओं ने चुगा, उनका उपयोग न करने से समस्त प्रजा असुरों के द्वारा पराजित न की जा सकी।

इस ब्राह्मण वर्णन में यह ध्यान देने योग्य है कि औषधियों में जब स्वास्थ्यनाशक असुर रूप कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय उनाक उपयोग न करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार अन्नादि औषधियों में प्रार्दुभूत असुर उनके उपयोग से प्राणियों के स्वास्थ्य को नष्ट कर देवों के कार्यक्रम को विध्वस्त कर देना चाहते हैं। यह ठीक है, कि ऐसी अवस्था में उन अन्नों का उपयोग न करने से भी तो कार्य नहीं चलता।

बिना अशनपान के प्राणी कब तक जीवित रह सकता है? फिर असुर भी ऐसे कपटी व धूर्त हैं, कि वे अपने आपको इतने स्पष्ट रूप में में कब आने देते हैं, कि उन्हें कोई भी जान पहचान सके और उनकी मार से अपने आपको बचा सके। इसलिये असुरों को प्राय: छद्मवेषी कहा गया है, ये लुक–छिपकर आते हैं और देवों को चक्कर में डालकर परेशान करते हैं। इसीलिए उनसे सुरक्षित रहने के लिए उर्पयुक्त ब्राह्मण सन्दर्भ की अन्तिम पंक्तियों में बताया गया है कि असुरों के आक्रमण को देखकर देवों ने आपस में सलाह की कि हमें इन औषधियों में अन्तर्निविष्ट असुरों का हनन करना चाहिए। किसी ने पूछा, कि वह किस उपाय से किया जा सकता है। इस प्रसंग से यह स्पष्ट है, कि वे अन्नदि औषधियों में अन्त: प्रादुर्भूत स्वास्थ्य नाशक तत्वों का यज्ञ के द्वारा ही अपावरण किया जा सकता है। जहाँ पर नियमित रूप से यज्ञों का अनुष्ठान होता है, वहाँ के विस्तृत वातावरण में उत्पन्न अन्नादि औषधियों में स्वास्थ्यनाशक तत्वों के प्रादुर्भाव की सम्भावना ही नहीं रहती।

शतपथ ब्राह्मण में इस प्रसंग का उपसंहार करते हुए आगे लिखा है–

एतेन व यज्ञेनेष्ट, वोभीनामौषधीनां याश्रच मनुष्या

उपजीवति याश्रच पशव कृत्यामिवत्वत् विषतित्रत्वत्

अपजघ्नु: तत आशनन् मनुष्या आलिशत पशव:।।

इस यज्ञ के द्वारा ही उन समस्त औषधियों के स्वास्थ्यनाशक विष–प्रभाव को नष्ट कर दिया गया, जिनका उपयोग मनुष्य अथवा पशु करते हैं, परिणाम स्वरूप मनुष्य उन अन्नादि औषधियों का उपयोग करने लगे और पशु भी चुगने लगे। यज्ञ के द्वारा वायु अथवा वातावरण की शुद्धि के लिये अधिक और किस प्रमाण की आवश्यकता है ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेक प्रसंग अनेक स्थलों में हैं। इसके लिये आप गोपथ ब्राह्मण के उत्तर भाग (1/19) और कौषीतकि ब्राह्मण (5/1) को देख सकते हैं। संक्षेप में चाहे काम्य यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं अथवा नित्य यज्ञ का और उसका चाहे कोई दूसरा भौतिक फल हो अथवा आध्यात्मिक, पर उन समस्त प्रकार के यज्ञों से वातावरण की शुद्धि, रूप, फल का निराकरण तो किया ही नहीं जा सकता। यज्ञ, अनुष्ठान किये जाने पर उनके परिणाम से बचकर हम निकल नहीं सकते। यह यज्ञों का अनिवार्य और अनिर्वाध फल है । यज्ञ के किसी भी दूसरे लक्ष्य पर पहुँचने के लिये हमें इस मार्ग से जाना ही होगा। यह देव और मानवों का अटूट सम्बन्ध है। इस रूप में मानव–समाज की समृद्धि का यह मूल आधार है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन

मानव यज्ञ के द्वारा ही देव अपने यज्ञ का अनुष्ठान यथावत् कर पाते हैं वे सर्वश्रेष्ठ धर्म है, ये अद्वितीय है, उत्तम है, इसकी तुलना अन्य किसी से नहीं की जा सकती।

यास्क महर्षि वैदिक शब्दों का निर्वाचन करते हुए देव शब्द के विषय में ऐसा लिखते हैं–

देव: कस्मात?

देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानोभवतीति वा।

देव क्यों कर देव कहलाता है?

देव इसलिए कि वह दान देता है, प्रकाशित करता है, प्रकाशित होता है अथवा द्युस्थान में रहता है। इन यास्क महर्षि के निर्वाचन से हमें यह स्पष्ट रीति से मालूम हुआ **'कि दा द्योतन'** अर्थात् प्रकाशित होना, दीपन—दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करना अथवा आकाश के अन्दर रहना ये गुण जिसमें पाये जायें वह देव व देवता है।

इन लक्षणों से देवों को पहचानने में आसानी होगी। परीक्षक लोगों का कहना है कि लोक में किसी वस्तु की सिद्धि करना चाहो तो दो चीजों की आवश्यकता होती है। वह दोनों चीजें कौन हैं? एक है लक्षण, दूसरी है प्रमाण। **'लक्षण प्रमाणाक्ष्या हि वस्तु सिद्धिः'** लक्षणा और प्रमाण से ही वस्तु की सिद्धि होती है, यह शास्त्रीय वचन है। उर्पयुक्त लक्षण से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि पदार्थ देव शब्द वाच्य है ऐसा सिद्ध होता है।

यर्जुवेद में चौदहवें अध्याय मेंएक मंत्र आता है कि पृथ्वी आदि पदार्थ स्पष्टोक्ति से देवता कहलाते हैं।

आग्निर्देवता, वातो देवता,
सूर्योदेवता, चन्द्रमा देवता, रुद्रो देवता, आदित्या देवता, मरुतो देवता,
बृहस्पतिदिवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता।।

(यजु.अ.14म.20)

मंत्र का अर्थ स्पष्ट है। इसमें कौन—कौन पदार्थ देवता पदवाच्य हैं, पाठक भली—भाँति जान सकते हैं। यज्ञ के द्वारा इन देवताओं को सत्कार करने से मनुष्य को विविध शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह कैसे हमें जान लेना चाहिए।

नित्य अग्निहोत्र को शास्त्रों में देवयज्ञ कहा गया है। देवयज्ञ का अभिप्राय है— देवताओं को उद्देश्य करके किये जोन वाली क्रिया। एक यज्ञकुण्ड के अन्दर अग्नि को आधार करके और उस अग्नि को प्रदीप्त करने के पश्चात् औषधि आदि से सिद्ध किये हुए हव्य पदार्थों की आहुति नित्य दी जाती है। इस तरह करने से देवता प्रसन्न हो जाते हैं अर्थात् शुद्ध हो जाते हैं।

'अग्नि वै देवानां मुखम' अग्नि देवताओं का मुख है। इसलिये अग्नि के अन्दर जो भी कोई पदार्थ डाला जाता है वह सभी देवताओं को प्राप्त हो जाता है। जैसे अपने मुख के अन्दर डाली हुई चीज सारे शरीर के अन्दर पहुँच जाती है उसी तरह अग्नि के अन्दर डाली हुई वस्तु जल, वायु, अन्तरिक्ष आदि देवताओं को आसानी से प्राप्त हो जाती है।

जब अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आदि पदार्थ जो देव हैं यज्ञ से शुद्ध हो जाते हैं, यही उन देवताओं का सत्कार कहलाता है। इसी यज्ञ क्रिया से देव संत्कृत होती हैं। अर्थात् शुद्ध हो जाती हैं। इस तरह प्रसन्न—शुद्ध हुए देवताओं को गृहस्थ प्राणी उपयोग में लाते हैं उन पदार्थों को सभी प्राणी अपनी इन्द्रियों को द्वारा ग्रहण करते हैं। इससे हमारी इन्द्रिय शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। इन्द्रिय शुद्ध होती हैं, जीवन पवित्र होता है, नीरोग रहता है। शुद्ध और पवित्र अन्न, जल के प्रयोग से जो हमारे शरीर के अंग बनते हैं, वह भी पवित्र होते हैं। यदन्नं तन्मन: जैसा अन्न वैसा ही मन होता है। इन्द्रियों को शक्ति का मिलना नहीं? इससे बढ़कर शक्ति कौन—सी होती है? मनुष्य शुद्ध मन से न जाने क्या—क्या कार्य साध सकता है।

बात यह है कि देवताओं को हमें उनका हव्य देना है।। हम हैं स्थूल, पर देवता हैं सूक्ष्म। हम उन्हें हव्य देंगे, तो उन्हें कैसे प्राप्त होगा? उन्हें तो सूक्ष्म हव्य चाहिए, तभी वे प्रसन्न होंगे। इसका उपाय सोचा गया था **'यज्ञ'**। इसका दृष्टांत भी समझ लेना चाहिए। हमें

अपने आत्मा को भोजन भी स्थूल है, पर आत्मा हमारी सूक्ष्म है। उसे यह स्थूल भोजन कैसे मिल सकता है? उसे चाहिए सूक्ष्म भोजन। उसका उपाय यह सोचा गया था कि हम उस स्थूल भोजन को मुख में द्वारा अपनी जठराग्नि में होम करें। ऐसा करने से वह जठराग्नि उस स्थूल भोजन को सूक्ष्म कर देती है।

वहीं सूक्ष्म अन्न हमारे आत्मा को प्राप्त हो जाने से वह हमारे शरीर को स्वस्थ रखता है। यदि आत्मा को वह स्थूल अन्न न पहुँचाया जायेगा, तो हमारा शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि सभी अस्वस्थ हो जावेंगे। फिर हम न अपना कोई लाभ कर सकेंगे, न दूसरों को उपकार। न कुछ बुद्धि द्वारा दूसरों का, न अपना कुछ हित सोच सकेंगे। जब हम अग्नि में हव्य डालते हैं, तब स्थूल अग्नि उस हवि को सूक्ष्म कर देती है और शांन्त होकर स्वं भी सूक्ष्म हो जाती है। तब वह सूक्ष्म अग्नि सूक्ष्म महाग्नि के साथ मिलकर उसे सूक्ष्म वायु की सहायता से आकाशाभिमुख आती हुई द्युलोक में पहुँचकर देवों को समर्पण करती है। वे देवता उस सूक्ष्म हवि से तृप्त होकर प्रजा के हित के लिये धान्य आदि की उत्पत्ति के लिये यथोचित वृष्टि कर देते हैं। जैसे कि मनुस्मृति में कहा गया है और उसी का बीज वेद में मिलता है—

'हविष्यान्तमजरं स्वविदि दिविस्पृशि आहुतं जुष्टमग्नौ'— ऋ.सं. 10/8/88

यहाँ श्री दुर्गाचार्य ने लिखा है—

'हवि पानतदेवाना च पुरोडाशादि निर्दग्धस्थील भावमग्निता क्रियते ।।

स्वः— आदित्यः, यं वेत्ति, यश्चाऽसौ वेदितव्यः— इति स्वविंद् अग्निः ।।

दिविस्पर्शः— द्यामसौ स्पृशति हविरुपनयन् आदित्यम्।' (निरुक्त 7/25/1)

इससे स्पष्ट हुआ कि जब हम देवताओं को प्रसन्न कर लेंगे, तो वह सम्पूर्ण चराचर स्थावर जङ्गमं पालित रहेगा, क्योंकि सभी का निर्वाह वृष्टि एवं अन्न पर है। उन देवताओं को प्रसन्न करने का उपाय है— यज्ञ तो यज्ञ से देवपूजा सिद्ध हुई, अतः यज्ञ का महत्त्व सिद्ध हुआ।

शास्त्रों की यह घोषणा है कि यज्ञ देवों को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है, विचारियें ये देव कौन हैं इनका हमसे क्या सम्बन्ध है? हम यज्ञ में इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते और हमारे प्रति उनका भी कुछ कर्तव्य है श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

देवान् भावयताऽनेन ते देवाः भावयन्तुवः।।

परस्परं भावयन्तः श्रेय परमवाप्स्यथ।

प्रजापति ने कहा— इस यज्ञ के द्वारा देवों को प्रभावित करो— तृप्त करो, तृप्त हुए देव तुमको तृप्त करें। परस्पर तृप्त करते हुए आप सब परम कल्याण को प्राप्त करेंगे। विचारना चाहिए कि वे कौन से देव हैं, जिनको प्रजा यज्ञ के द्वारा तृप्त करती है और उसके बदले में सुख की अथवा अनुकूल स्थितियों की वर्षा से प्रजा की तृप्त कर देते हैं।। इसकी खोज में जब हम निकलते हैं, हमें अग्नि, चन्द्र, पृथ्वी, सूर्य, औषधि, वनस्पति आदि नामों में व्यवहृत देवों का पता लगता है। यज्ञ से इनकी तृप्ति कैसे होती है, यह भी विचार करना आवश्यक है। इसका एक स्थूल रूप मनु के श्लोक द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्ज्यते वृष्टिवर्ष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य की किरणों में उपस्थित होती है। उसके संसर्ग में अन्तरिक्ष में इस प्रकार का वातावरण निर्मित हो जाता है, जिससे मेघों का संग्रह होने लगता है, वे समय पाकर पृथ्वी पर बरसते हैं, उस पर वृष्टि से यहाँ औषधि, वनस्पति, लता, फल, फूल आदि विविध खाद्य पदार्थ न केवल मानव के, अपितु प्राणिमात्र के लिए उत्पन्न हो जाते हैं। औषधि, वनस्पति, लता, फूल, फल, आदि खाद्यों में विविध प्रकार की जीवन शक्तियाँ (खाद्योज) रहती हैं, जो फलादि का उपभोग करने से प्राणियों को जीवन प्रदान करती हैं। वे जीवन शक्तियाँ इनमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल आदि के प्रभाव से ही उत्पन्न हो पाती हैं।

यदि हम यज्ञादि अनुष्ठान करके आज्य एवं अन्य विविध सामग्री को अग्नि के द्वारा उन देवों कर पहुँचाते रहते हैं, तो वे उन जीवन शक्तियों को अधिक और उत्तम रूप से उत्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। यही यज्ञ के द्वारा देवों की तृप्ति का स्वरूप है। यदि हम यज्ञ नहीं करते तो यह विराट् रूप से प्रजापति के जो यज्ञ हो रहा है— सूर्य, चन्द्र किरणों द्वारा रस वर्षा करते हैं, ताप पहुँचाते हैं, वायु प्राण संचार करता है, जल अनुकूल रसों को प्रदान करता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओं के रूप में अनन्त राक्षस या असुर हमारे जीवन को चाट जाने के लिये हमारे चारों ओर मँडराते हैं, ये सब देव मिलकर उन असुरों का ध्वंस करने के लिए बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। पर हमारे द्वारा मलीनता आदि का प्रसार करने वाले कार्यों से असुरों की संख्या में कल्पनातीत वृद्धि हो जाती है जिससे प्रजा में रोग आदि महामारी के रूप में फैल जाते हैं। प्रजा नष्ट होने लगती है। पर वह इसके आधार— भूत कारणों को नहीं समझ पाती और कष्ट उठाती है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची—

1- अग्रवाल, वासुदेव (1963) 'इण्डिया एज नोन टू पाणिनी— ए स्टडी ऑफ द कल्चरल मैटीरियल इन दा अष्टाध्यायी', पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2- ज्ञानश्रुति श्रीविद्यानन्द (2006) 'यज्ञ ए कॉम्प्रीहेन्सिव सर्वे' योगा पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, इण्डिया।

3- क्रिष्णानन्द स्वामी (2010) 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ रिलीजस एण्ड फिलॉसोफिक थॉट इन इण्डिया' डिवाइन लाइफ सोसाइटी, ऋषिकेश।

4- निगल, एस०जी० (1986) 'एक्सियोलॉजिकल एप्रोच टू दा वेदाज' नॉर्दन बुक सेण्टर, न्यू देहली।

5- प्रसून श्रीकान्त (2010) 'इण्डियन स्क्रिप्चर्स' पुस्तक महल, आगरा।

6- वेदानन्द स्वामी (1993) 'ओम हिन्दुत्वम्' डेली रिलीजस राइट्स ऑफ द हिन्दूज, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन।